

गुरु-शिष्य-योग

श्री स्वामी बिडानन्द



अनुवादिका

श्री स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर २४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४
(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—12

निःशुल्क वितरणार्थ

‘द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर’ के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा ‘योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर २४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड’ में मुद्रित।

For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org



ब्रह्मलीन परम पावन
श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा
प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में सामूहिक ध्यान के उपरान्त
दिये गये प्रवचनों का सार-संग्रह



विषय सूची

१. गुरु का हृदय	५
२. गुरु-भक्ति	८
३. गुरु-शिष्य-योग	१२
४. गुरु-शिष्य-सम्बन्ध का सार	१५
५. सच्चा शिष्यत्व	२०
६. गुरु की विद्यमानता के प्रति जागरूक रहें.	२४
७. गुरुदेव का आह्वान	२८
८. गुरु-कृपा	३२
९. गुरुदेव ने हमें क्या शिक्षा दी!	३७

गुरु का हृदय

हम उनकी उपासना का महान् वार्षिक दिवस मना रहे हैं जो हमारे आन्तरिक अज्ञान के अन्धकार को दूर करने के लिए हमारे लिए प्रकाश लाने वाले हैं, जो हमें अवास्तविकताओं से वास्तविकता की ओर ले जाते हैं और हमें जन्म-मरण के निरन्तर चलते हुए चक्र से परे ले जा कर शाश्वत पुनर्जन्मातीत जीवन के साम्राज्य में जाने के योग्य बनाते हैं। गुरुपूर्णिमा उन सब महान् विभूतियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने का महोत्सव है जो स्वयं परम धाम तक पहुँच कर, स्वयं को सदैव के लिए मुक्त करके, उधर से मुख मोड़ कर दूसरों को प्रबुद्ध और मुक्त करने में संलग्न हो गये हैं।

इन महान् गुरुओं के हृदय में क्या है? जो-कुछ भी प्राप्त करने योग्य था, उसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् जब उनके लिए कुछ भी कार्य करने का कारण शेष नहीं रहा है, तब भी वह क्यों कार्य करते हैं और क्यों स्वयं को निरन्तर कर्म करने में प्रवृत्त किये हुए हैं? जो-कुछ भी कार्य उन्होंने करना था, वह कर चुके हैं; जो-कुछ प्राप्तव्य था, वह प्राप्त कर चुके हैं। अब उनकी न इच्छाएँ शेष हैं, न कामनाएँ; न आवश्यकताएँ शेष रही हैं, न अभिप्राय और न ही और संकल्प शेष रहे हैं।

इस प्रकार वह परम सन्तोष की अवस्था में आनन्दमग्न हैं; क्योंकि वह जानते हैं कि अब उनके लिए और कुछ भी करना शेष नहीं है। उनके हृदय परिपूर्ण हैं। उनमें कोई इच्छा शेष नहीं रही है।

ऐसी विभूतियों के लिए कार्य करते रहने का क्या कारण हो सकता है, जब कि उन्हें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रह गयी होती, जब कि सब-कुछ प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब वह परम प्राचुर्यता और शान्ति की अवस्था में होते हैं? भारतीय आध्यात्मिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति इन महान् विभूतियों के हृदय के सम्बन्ध में क्या कहेंगे? कहते हैं कि यदि इनमें किसी इच्छा का होना कहा जा सकता है यदि आप अपने दृष्टिकोण के अनुसार इसका कुछ स्पष्टीकरण देना चाहते हैं तब आप कह सकते हैं कि उनमें एक विचार, एक इच्छा, एक अभिलाषा है कि समस्त वास्तविक जिज्ञासु प्राणी, जो परम लक्ष्य की प्राप्ति की खोज में हैं, उसे प्राप्त कर लें, वह सब भी उसी अवस्था को प्राप्त कर लें जिसे उन्होंने प्राप्त कर लिया है।

इस एक आन्तरिक प्रेरणा से उनमें एक सहज स्वाभाविक परम प्रेम की और लोक-कल्याण की प्रवृत्ति है कि परमात्मा की कृपा द्वारा जिस महान् अवस्था में वह स्थित हैं, उसी में सभी स्थित हो जायें। केवल एक इसी अभिप्राय से वह कार्य करते हैं।

इसलिए जब केवल एक यही अभिप्राय उन्हें कार्य में लगाता है, तब कम-से-कम हमें इतना तो करना ही चाहिए कि अपने सामर्थ्यानुसार उनके जैसा बनने की आकांक्षा करें। अपने जीवनादर्श द्वारा उन्होंने जो आदर्श हमारे समक्ष रखा है, उसके निकट तक पहुँचने की इच्छा रखें। उनके आह्वान का प्रत्युत्तर दें। इसी जीवन में यहीं और अभी मुक्त होने की अभिलाषा करें; दूर कहीं मृत्यु के पश्चात् नहीं, प्रत्युत् अभी और यहीं, जिससे कि इसी शरीर में हम एक मुक्त जीव जीवन्मुक्त बन जायें।

वास्तव में यही श्रेष्ठतम गुरुपूर्णमा की पूजा होगी, गुरु के प्रति उच्चतम भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति होगी। अतः पूर्ण गम्भीरता से, पूर्ण

निष्कपटता से उनके-जैसा बनने का अथक प्रयास करें। उनके-जैसा बनने के लिए उन्हीं से प्रार्थना करें “मेरी समस्त कमियों के कारण, त्रुटियों और अधूरेपन के कारण मेरे अपने प्रयास करने और इच्छा करने मात्र से यह कभी सम्भव नहीं होगा; अतः आप अपनी अनन्त कृपा से इसे पूर्ण करें।”

और, वह ऐसा करने को तैयार हैं।

अतः आओ, हम सब मिल कर एकत्व की अवस्था में स्थित हो जायें, हम सब मिल कर अपने जीवन को उस महान् और भव्य इच्छा का एक वास्तविक और सच्चा प्रत्युत्तर बनायें, जो इन दिव्य परिपूर्ण विभूतियों में अन्य सब पर उसी परिपूर्णता की वृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न करती है, जो इन्हें निरन्तर मानव-जगत् को उनकी दिव्य अवस्था की उच्चतर जागरूकता के प्रति जागृत करने के महान् कार्य में लगाये रखती है।

ऐसा ही हो! यही आपकी सर्वोपरि पूजा हो और सर्वोच्च भक्ति हो! तब यह गुरुपूर्णमा आपके जीवन के बाह्य स्थूल स्तर पर धार्मिक दिवस मात्र ही नहीं रह जायेगी, प्रत्युत् यह एक महान् आध्यात्मिक युगान्तरकारी घटना बन जायेगी, आपको आन्तरिक सच्चिदानन्द चैतन्य की ओर ले जाने वाली आध्यात्मिक दिशा-परिवर्तनकारी घटना हो जायेगी। ऐसा ही जीवन होना चाहिए और ईश्वर की कृपा से, गुरुदेव के स्नेहपूर्ण आशीर्वाद से ऐसा ही हो! ईश्वर का आशीर्वाद आपको प्राप्त हो!

गुरु-भक्ति

ईश्वर एक अज्ञात सत्ता है, एक अदृश्य सत्ता है; तथापि वेदान्त ने पूर्णतया अकाट्य तर्क से, विवेकपूर्ण तर्क और युक्तियों से ईश्वर की वास्तविकता को प्रतिपादित किया है। शास्त्र भी हमें बताते हैं कि भगवान् एक ऐसी सत्ता है जो पावन है, पवित्र है, पूर्णतया शुद्ध, उदात्त और उत्कृष्ट है। किन्तु फिर भी ईश्वर हमारे मन की धारणा है। हमने ईश्वर को देखा नहीं है। हमने केवल उनके सम्बन्ध में श्रवण किया है। हम उनके विषय में केवल अनुमान कर सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं।

किन्तु यदि हम किसी मनुष्य में पवित्रता का प्रकटीकरण देखते हैं; पावनता, शुद्धता, उदात्तता, भलाई, चरित्र और व्यवहार की उत्कृष्टता देखते हैं; स्वभाव, भावनाओं, विचारों और कार्यों की श्रेष्ठता पाते हैं; यदि हम सामान्य से कुछ बढ़ कर, कुछ विलक्षण, कुछ विशिष्ट देखते हैं, उन गुणों की अभिव्यक्ति देखते हैं, जो हमें केवल भगवान् में ही होनी बतायी गयी हैं, तब हम कह उठते हैं “यदि ऐसा विलक्षण व्यक्ति हो सकता है, तब भगवान् भी अवश्य ही हैं; अन्यथा ये सब गुण जो सामान्यतः किसी में देखने में नहीं आते, इसमें कहाँ से आ सकते हैं।” जब हम यह दिव्यता, यह पवित्रता, यह पावनता देखते हैं, तब हम समझने लगते हैं कि ‘हाँ, मैंने ईश्वर को नहीं देखा; किन्तु ईश्वरत्व को देखा है। सभी धर्मग्रन्थों और सन्तों द्वारा जो गुण ईश्वर के बताये गये हैं, वे सब असाधारण रूप से, असामान्य मात्रा में इसमें हैं। क्योंकि मैंने इस व्यक्ति को देखा है और मैं इसे

जानता हूँ; अतः मेरा विश्वास है कि ईश्वर है। भगवान् गुरु के रूप में स्वयं को प्रकट करते हैं।

इस प्रकार गुरु एक योजक तत्त्व बन जाते हैं। वह भटकती हुई भ्रमित जीवात्मा को अपने मूल-स्रोत परमात्मा से पुनः सम्बन्ध स्थापित करवाने का माध्यम बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि हम स्वयं अपने गुरु के मध्य कड़ी जोड़ सकें, तो वह कड़ी गुरु से गुरु-कृपा (अर्थात् गुरु जो-कुछ भी हैं उनका ज्ञान, उनकी पवित्रता, उनकी शुद्धता, उनकी आध्यात्मिकता इत्यादि सब-कुछ) प्राप्त करने की प्रणाली बन जायेगी। और यह प्रणाली 'गुरु-भक्ति' कहलाती हैं।

यह गुरु-भक्ति ही है जिसके द्वारा साधक, जिज्ञासु अथवा शिष्य एक ऐसी सक्षम प्रणाली, एक संयोजक मार्ग, एक माध्यम अपने और गुरु के मध्य बना लेता है जिसके द्वारा गुरु ने जो-कुछ भी ईश्वर से प्राप्त किया है, वह अपने शिष्य को प्रदान कर सकते हैं।

अतः हमें एक मार्ग सुलभ करवाना होगा जिससे गुरु जो देना चाहते हैं, वह दे सकें। यह 'गुरु-भक्ति' के द्वारा ही हो सकता है, जहाँ अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं होता। यदि यह भाव भी मन में आ जाये कि 'मुझमें अत्यधिक गुरु-भक्ति है,' बस सर्वनाश! वह भक्ति वहीं व्यर्थ हो जाती है, निरस्त हो जाती है। आपको स्वयं उस प्रेम का, उस भक्ति का साकार रूप बन जाना चाहिए। आपमें से उस भक्ति, उस प्रेम की भावना का अस्तित्व ही समाप्त हो जाना चाहिए, अन्यथा यह सूक्ष्म आध्यात्मिक अहंकार बन जाता है। गुरु का अस्तित्व इस पृथक्कारक अहन्ता को इस भिन्न व्यक्तित्व अथवा भिन्न अस्तित्व को हटाने के लिए है और यदि गुरु-भक्ति इस अहंकार की, इस अभिमान की वृद्धि करने और इसे परिपक्व करने का साधन

बन जाती है, तब इसका उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है और यह आत्म-पराजय का कारण बन जाती है।

अतः सच्ची गुरु-भक्ति निरभिमानता और विनम्रतापूर्ण होती है। शबरी भक्ति-स्वरूपा थी। उसकी श्री राम के प्रति अगाध भक्ति थी; किन्तु वह इस विषय में अनभिज्ञ थी कि वह श्री राम की परम भक्त है। न ही हनुमान् इसके प्रति सजग थे कि वह श्री राम के महान् भक्त हैं। यह तो उनका सहज स्वभाव था। वह भक्ति-भाव की प्रतिमूर्ति थे। वृन्दावन की गोपियाँ भी श्री कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति-भावना की महानता से अनभिज्ञ थीं। वह कहती थीं “हम तो केवल यह जानती हैं कि मात्र श्री कृष्ण ही उपासनीय हैं और कुछ हमें ज्ञात नहीं है। वह हमारे निज-स्वरूप हैं, हम उनसे भिन्न नहीं हैं। वह हमसे दूर हो जायें, तो हम जीवित नहीं रहेंगी, हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा।” वह प्रेम से परिपूर्ण थीं, प्रेम की अहंपूर्ण भिन्नता से नहीं।

गुरु के प्रति भक्ति-भाव और श्रद्धा की जितनी वृद्धि होगी, उतना ही अधिक गुरु की कृपा का प्रवाह होगा। जितनी अधिक गुरु के आदर्शों और सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की इच्छा होगी, गुरु के उपदेशों को जितनी उत्कण्ठा और दृढ़निश्चयता से, जितनी गम्भीरता और नियमितता से दिन-प्रति-दिन अपने दैनिक कार्यों में उतारने की इच्छा होगी, उतना ही अधिक गुरु-कृपा का प्रवाह आपकी ओर होगा। गुरुदेव बारम्बार यह दोहराने में कभी अघाते नहीं थे कि ‘आज्ञाकारिता सम्मान से अधिक अच्छी है।’

जब गुरु के प्रति तीव्र भक्ति हो, गहन आन्तरिकता हो, उनके आदेश, निर्देश और उपदेशों का पालन करने की प्रबल इच्छा हो, तब गुरु की ओर से शिष्य की ओर स्वयमेव ही प्रबोधन प्रवाहित होने लगता है। जिस प्रबोधन में गुरु स्वयं स्थित होता है, वह शिष्य की ओर ऐसी तीव्र गति से आता है जैसे एक अनावृत विद्युत् तार के एक सिरे से चिनगारी उड़ कर दूसरी में जाती है।

अतः गुरु से सर्वाधिक लाभ लेने का सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रभावशाली साधन है, अपने और गुरु के मध्य में एक उच्च, उदात्त, ओजस्वी गुरु-भक्ति का पथ, एक कड़ी बना लेना। और यह उत्कृष्ट गुरु-भक्ति ही है जिसमें सर्वोच्च प्रेम और श्रद्धा के साथ सर्वोच्च आज्ञाकारिता मिश्रित रहती है, जिसमें गुरु के निर्देशों का पालन करके उन्हें प्रसन्न करने की महानतम इच्छा सम्मिलित रहती है, जो कि गुरु-कृपा प्रवाहित होने के लिए उत्कृष्ट प्रणाली बन जाती है। तब इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त हो जाती है और आप वास्तविकता को 'देखते हैं', वास्तविकता को 'समझते हैं'।

यही परम्परा है। यही गुरु-शिष्य सम्बन्ध की वास्तविक आन्तरिक प्रगति का विज्ञान है, जिसके द्वारा शिष्य अपने गुरु से सर्वाधिक मात्रा में लाभ प्राप्त कर सकता है।

आदि काल से अब आधुनिक युग तक के समस्त ब्रह्मविद्या गुरुओं की कृपा आप सब पर हो! आदर्श शिष्य कैसा होना चाहिए, सच्चा शिष्यत्व क्या है, इस पर आप सब गहनता से मनन करें और उसके द्वारा लाभान्वित हों !

गुरु-शिष्य-योग

परम सत्ता के सान्निध्य की वृद्धि करने और उसके सम्पर्क में आने से ही व्यक्ति अन्ततः परम सत्ता बन जाता है। पारसमणि के केवल स्पर्श के द्वारा ही, केवल सम्पर्क के द्वारा ही लोहा स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। यदि आप बाल-भर भी अन्तर रखेंगे, तो लोहा सदैव लोहा ही रहेगा। पारस भले ही कितना शक्तिशाली क्यों न हो, यदि धातु को उसके वास्तविक सम्पर्क में नहीं लाया जाता, तो उसकी शक्ति का प्रभाव धातु पर नहीं हो सकता।

इससे एक महान् सत्य प्रकट होता है। परिवर्तनकारी दिव्य-शक्ति-स्रोत के साथ वास्तविक सम्पर्क स्थापित करने पर ही व्यक्ति प्रबुद्ध होता है, दिव्य होता है, परिवर्तित होता है; अतः अपने गुरु से सर्वाधिक लाभान्वित होने के लिए हमें स्वयं को उनके साथ संयुक्त करना होगा। यह संयोजन विश्वास और श्रद्धा के द्वारा होता है। यह पराशक्ति के द्वारा होता है।

क्या गुरु से सम्पर्क स्थापित करने का कोई और भी ढंग है? हाँ, एक और है जिसके सम्बन्ध में गुरुदेव भी निरन्तर बताते रहे हैं। गुरुदेव ने कहा “आज्ञाकारिता श्रद्धा से उत्तम है।” भक्ति होना अच्छा है। किन्तु भक्ति का लक्षण क्या है? इसका वास्तविक प्रमाण क्या है कि आपमें गुरु के प्रति भक्ति है? वह यह है कि आप उनके निर्देशों का गम्भीरतापूर्वक, सच्चाई

से और निष्कपटता से पालन करने को तत्पर रहें और उनके उपदेशों के अनुसार अपना जीवन बनायें।

जो मार्ग गुरु ने हमारे लिए बनाया है, उस पर चलना और जिस ओर उन्होंने संकेत किया है, उसी दिशा का अनुसरण करना गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति होने का परिचायक है। यही भक्ति है। भक्ति का अर्थ सेवा भी है। भाव से गुरु की सेवा करना भक्ति है। और गुरु की सबसे अधिक सेवा क्या है? उनके-जैसा बनने का प्रयत्न करना। जैसा करने को उन्होंने आपसे कहा है, तथावत् ही करें; क्योंकि ऐसा करने से आपका उनसे और भी गहन सम्बन्ध तथा सम्पर्क बन जायेगा। जब आप गुरु के उपदेशों के अनुसार जीवन बनाते हैं, तब आप अपने गुरु के गहनतम सम्पर्क में होते हैं।

‘गुरु-शिष्य-योग’ उस समय अपनी चरमावस्था में होता है, जब शिष्य स्वयं गुरु की शिक्षाओं का मूर्त रूप बन जाता है, गुरु के उपदेशों की साकार प्रतिमा हो जाता है, उनकी आज्ञा और उनके आदेशों का साक्षात् प्रतिरूप बन जाता है।

जब गुरु और शिष्य के मध्य ऐसा योग हो, तब कुछ भी असम्भव नहीं है।

गीता-उपदेश भी तब प्रारम्भ होता है, जब गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्वैच्छिक रूप से स्थापित हो कर अभिव्यक्त हो जाता है। “मैं आपके शिष्य हूँ, आपके चरणों में शरणापन्न हूँ, मेरे संशय दूर करें, मेरे लिए जो हितकर है, वह कहें।” और, अन्ततः जब उनका सम्पर्क परिपूर्ण शिष्यत्व में फलीभूत हो जाता है, तब हमें अन्तिम सर्वोत्कृष्ट श्लोक की उपलब्धि होती है। ऐसे शिष्यत्व में, इस प्रकार के योग गुरु-शिष्य-योग में जिज्ञासु जीव और प्रबोधक मोक्षदायक गुरु के मध्य ऐसे आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित

हो जाने का फल क्या होगा ? इसके परिणाम की महानता गीता के अन्तिम श्लोक में अभिव्यक्त होती है। जहाँ ऐसी आज्ञाकारिता, ऐसा एकत्व, ऐसा सम्पर्क होगा, वहाँ विजय, विभूति और अचल नीति है।

अतः ईश्वर की कृपा और गुरुदेव के आशीर्वाद से हम इस महत्त्वपूर्ण गुरु-शिष्य-योग के इस पक्ष पर चिन्तन कर सके हैं। हमने देखा है कि जितना गहन संयोग होगा, उतना अधिक शिष्य को प्रबोध और लाभ होगा तथा उतना ही अधिक गुरु वितरित करने में, प्रदान करने में सक्षम होंगे “हाँ, जो-कुछ भी मेरे पास है, वह तुम्हारे लिए है। आओ, ग्रहण करो।” यह तभी सम्भव है, जब दोनों ओर से परस्पर यह सम्पर्क हो।

घनिष्ठ सम्पर्क भक्ति है, पराभक्ति है। उससे भी अधिक गहन सम्पर्क है गुरु के आदेशों के अन्तर्निहित भाव में निरन्तर जीवन जीना, उनके निर्देशों का निरन्तर पालन करना, उनकी आज्ञा, उनके उपदेश और आदेशों के अनुसार पूर्णरूपेण चलना। यह गुरु-शिष्य के मध्य गहनतम सम्बन्ध, हार्दिक सम्बन्ध, अन्तःकरण का सम्बन्ध बना देता है। शिष्य अपने गुरु के उपदेशों की साकार प्रतिमा बन जाता है। वह गम्भीरता से और कर्मनिष्ठता से स्वयं को गुरु-उपदेश और गुरु-आदेश का आदर्श रूप बनाने में लग जाता है। यही सर्वश्रेष्ठ वरदान है। यही शिष्यत्व का सार है। शिष्यत्व और है क्या? यह है स्वयं को गुरु-ज्ञान, गुरु-उपदेश और गुरु-आदेश का पूर्ण प्रतीक बना लेना।

गुरु-शिष्य-सम्बन्ध का सार

भारत की पुण्यभूमि ने हमें मानव-जन्म के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, उच्चतम तथा परम लक्ष्य के रूप में ईश्वर-साक्षात्कार का लक्ष्य दिया है। इसका प्राचीन ज्ञान और जीवन्त आध्यात्मिक अनुभव स्वर्ग और नरक से तथा पुण्य और पाप से परे तक गया है। मन और वाणी की पहुँच से परे आश्चर्यजनक ऊँचाइयों तक गया है।

यह वह भूमि है जहाँ प्रत्येक युग में ऐसे सन्त, महात्मा और दिव्य विभूति-सम्पन्न महान् व्यक्ति हुए जिन्होंने त्याग, तप, संयम, प्रार्थना, भक्ति, उपासना और गहन ध्यानपूर्ण आध्यात्मिक जीवन जिया और प्रबोधन प्राप्त कर लेने के उपरान्त हमारे लिए यह सकारात्मक प्रमाण छोड़ गये कि उस परम सत्ता का अस्तित्व है तथा यह मार्ग उचित है। यदि इस प्रकार साधन किया जाये, तब यही अनुभूति आपको, मुझे और अन्य सभी को प्राप्त हो सकती है।

आप सबके जीवन की विशेषता यह है कि आपने इसे उत्तराधिकार में प्राप्त किया है। “महापुरुषों के जीवन हमें प्रायः स्मरण दिलाते हैं कि हम अपना जीवन उदात्त बना सकते हैं।” यदि कोई अनुकरण ही न करे, कोई उदात्तीकरण करना ही न चाहे, तो लाभ क्या हुआ? तब तो इन महापुरुषों का जीवन जीना निरर्थक ही रहा। किन्तु, ऐसा नहीं है। आज तक भी विश्व में प्रत्येक स्थान पर उनके उपदेश जिज्ञासु जीवों का मार्ग-दर्शन करके उन्हें

लाभान्वित कर रहे हैं। इसलिए अपने जीवनो के द्वारा हम उनके तप और त्याग का, उनके मौन और एकान्तवास का, उनके संयम, आत्म-दमन और गहन आध्यात्मिक ध्यान का समर्थन करते हैं। हम उनकी बहुमूल्यता की पुष्टि करते हैं। अतः इस प्रकार हम जीवन का अर्थ समझने के लिए ही बने हैं। हमें इस महान् प्राचीन आदर्श को पूर्ण करने के लिए जीना है।

ऐसे जीवन का सार है उस महान् लक्ष्य की यथार्थता के प्रति गहन अन्तःनिष्ठा होना। और ऐसे जीवन का सार उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तीव्र आकांक्षा का होना तथा उसके कुछ भी मूल्य चुकाने की तत्परता होना भी है। लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शिष्य के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक तुच्छ वस्तु को त्यागने को तत्पर रहे। इसमें से भी सर्वाधिक आवश्यक है अपने तुच्छ अहं का त्याग।

समस्त महान् विभूतियों ने इसी सत्य की अन्वेषणा की है और भिन्न-भिन्न शब्दों में इसकी उद्घोषणा की है। इस तुच्छ अहं को समाप्त करके ही व्यक्ति अमरत्व पा सकता है। “प्रभु! मैं कब मुक्त होऊँगा?” उत्तर मिलता है “जब ‘मैं’ समाप्त हो जायेगा।” शिष्य को तब बोध हो जाता है और वह कह उठता है “जब ‘मैं’ समाप्त हो जायेगा, तब मैं मुक्त हो जाऊँगा।”

हमारे आदि ऋषियों ने कहा “यह शिष्यत्व द्वारा प्राप्त हो सकता है ‘तद्बुद्धिं प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।’ गुरु के सान्निध्य में जायें, उनके चरणों में बैठें और ज्ञान प्राप्त करें।” तब गुरु कहते हैं “हाँ, मैं तुम्हें बन्धन में डालने वाले अज्ञान को दूर करने हेतु ज्ञान देने के लिए ही हूँ। मैं वह शल्य-चिकित्सक हूँ, जो तुम्हारे मोतियाबिन्द को हटा कर तुम्हें पुनः

नेत्र-ज्योति प्रदान कर दे।” किन्तु अब यदि रोगी कहे कि ‘नहीं-नहीं! मैं नेत्र-ज्योति तो प्राप्त करना चाहता हूँ, किन्तु मोतियाबिन्द दूर करना नहीं चाहता, यह मेरा है, मुझे अच्छा लगता है।’ तब शल्य-चिकित्सक उत्तर देगा “क्षमा कीजिए, यह सम्भव नहीं है। यह मोतियाबिन्द तुम्हारे लिए व्यर्थ है। यह तुम्हारा मित्र नहीं, शत्रु है; तुम्हारा सहायक नहीं, तुम पर बोझ है। तुम्हें इससे छुटकारा पाना होगा। तुम्हारी दृष्टि में जो बाधक है, मैं उसे दूर करने में सहायता करना चाहता हूँ जिससे तुम पुनः दृष्टि प्राप्त कर सको। अन्धकार के स्थान पर मैं प्रकाश लाना चाहता हूँ; अतः जो अँधेरे का कारण है, उसे दूर कर रहा हूँ।”

अतः गुरु का सार है उस अज्ञान को दूर करना जो बन्धन का, दुःख का, पीड़ा का कारण है और शिष्य का सार है इस अज्ञान से छुटकारा पाने के लिए लालायित होना, अज्ञान के आवरण को हटा कर बोध-प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा रखना। जब तक उसमें यह उत्कण्ठा नहीं है, प्रबोधन-प्राप्ति की आकांक्षा नहीं है, तब तक वह शिष्य ही नहीं है। शत-शत गुरु भी उसके लिए कुछ नहीं कर सकते, जब तक कि उसमें मोक्ष-प्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा नहीं है और इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं से छुटकारा पाने की इच्छा नहीं है।

वास्तविक त्याग का यथार्थ सारतत्त्व है अपने-आपका त्याग, व्यक्ति की निज-पहचान का त्याग; क्योंकि वही अज्ञान का मूल कारण है। अतः शिष्यत्व का सार है अपने निज-स्वरूप में, अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना तथा जो भी अज्ञान को उत्पन्न करने वाला हो, उसका

त्याग करने को तत्पर होना। यदि वह इससे चिपका रहता है, तब गुरु भले ही सद्गुरु हों, साक्षात् भगवान् हों, वह कुछ नहीं कर सकेंगे।

अतः गुरु-सिद्धान्त का सार है शिष्य के अन्धकार को नष्ट करना। शिष्यत्व का सार है इसे नष्ट करने की इच्छा का होना। ज्यों-ही इन दोनों का संयोग होता है कि बस बात बन जाती है। अहंकार-स्वरूप इस अन्धकार से छुटकारा पाने के लिए शिष्य में उत्कण्ठा होनी चाहिए। उसे लालायित रहना चाहिए। इस प्रकार शिष्य इस मिथ्या अहंकार के मूल कारण से छुटकारा पाने के लिए, गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए, उनसे आवश्यक निर्देश प्राप्त करने के लिए गुरु के पास जाता है।

“मेरा सब-कुछ ले लें; किन्तु मेरा अहंकार न लें” यदि शिष्य इस प्रकार कहता है, तब गुरु का उत्तर है “क्षमा करें, यही एक ऐसी वस्तु है जिसे दूर करना ही है। भगवान् इसी कार्य हेतु मुझे तुम्हारे जीवन में लाये हैं। अन्य सभी वस्तुएँ केवल ऊपरी हैं, गौण हैं, मुख्य बात प्रकाश को लाने के लिए अन्धकार को दूर हटाना है। अतः तुम्हें स्वयं को समर्पित करना होगा।” अतः शिष्यत्व का सार शिष्य की चेतना में, उसके हृदय में, मन और बुद्धि में गहन रूप से स्थित रहना चाहिए। व्यक्ति को इस सीधी-सी बात को समझ लेना चाहिए कि अहंकार हमारा शत्रु है, यही हमारी समस्या है। वास्तव में यही हमारे संसार को, हमारे बन्धन को बनाने वाला है। हमें इसके साथ प्रेम नहीं बढ़ाना चाहिए, न ही इसे पोषित करते रहना चाहिए। अहंकार को रख कर आप ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। यह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की भाँति परस्पर विरोधी हैं। इसे आपको समझ लेना

आवश्यक है। व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन के विषय में इस मुख्य तथ्य को ग्रहण करके आगे कार्यान्वित करना चाहिए।

भगवान् आपको यह अन्तर्ज्ञान और सहजबुद्धि प्रदान करें! गुरुदेव आपको सच्चा शिष्य बनने में सहायता करें, क्योंकि जीवन अल्प है। समय उड़ रहा है। हम आराम से नहीं बैठे रह सकते। आध्यात्मिक जीवन क्या है, योग क्या है, इसके सम्बन्ध में अपनी ग्रहणशीलता के प्रति, पूर्णतया सही रहें और निश्चल बनें, गम्भीर बनें!

सच्चा शिष्यत्व

एक सच्चे जिज्ञासु साधक से यदि गुरुदेव कुछ भी आशा रखते हैं, तो वह है अपने जीवन को दिव्य बनाना। कुछ भी यदि उनका अभिप्राय है, तो वह दिव्य जीवन है।

उनकी उपस्थिति हमें अपनी कृपा-दृष्टि द्वारा स्पर्श करके प्रेरणा देने के लिए है, हमारी प्रसुप्त दिव्यता जागृत करने के लिए है, हमें अपने निज-स्वरूप की जागरूकता के प्रति और हमारे भीतर के अस्तित्व को जो दिव्यता ही है को जागृत करके के लिए है।

यह आश्रम एक ऐसा केन्द्र-स्थल है जो हमारी दृष्टि पर पड़े हुए उस आवरण को दूर करने के लिए है जो सर्वव्यापक दिव्यता को आच्छादित किये हुए है, उस आन्तरिक आवरण को हटाने के लिए है जो हमारी निजी दिव्यता को हमारी ही दृष्टि से छिपाये रखता है, जब कि हम उसी सर्वव्यापक, अनन्त, शाश्वत ब्रह्म-सत्ता के ही अंश हैं और उसका अंश होने के फल-स्वरूप हमारा निज-स्वरूप भी तत्त्वतः वही है जो उस परम सत्ता का है।

हम नाम-रूपों में भिन्न-भिन्न हैं; किन्तु अपने अन्तर्निहित वास्तविक स्वभाव में तत्त्वतः हम सब एक-समान, शाश्वत और अपरिवर्तनशील हैं। हम शुद्ध दिव्यता के पूर्ण शुद्ध सत्त्व हैं। हमारे भीतर इसको पहचानने की योग्यता है और हम गम्भीरतापूर्वक, सच्चाई से अपनी इस प्रसुप्त दिव्यता को

जगाने के लिए संघर्ष कर सकते हैं, इसको पहचानने की इच्छा और आकांक्षा कर सकते हैं। हममें क्षमता है कि हम इस प्रयत्न में लगे रहें कि निरन्तर उसी को जागृत रखना है, उसी को अभिव्यक्त करना है तथा उसके अतिरिक्त उसके अन्य तुच्छ पक्ष को, बाह्य रूप के प्रकटीकरण को नकारते रहना है।

हमारा बाह्य रूप सीमित अतात्त्विक गुणों से निर्मित है इन्द्रियाँ, अन्तर्ज्ञान शक्तियाँ, जीवन संवेदनाएँ, जीवन तत्त्व पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, स्मृति, कल्पना, विचार और संवेदनाएँ। इन सबको अपना वास्तविक रूप मानने से इनकार करना तथा तुच्छ, अपूर्ण, परिवर्तनशील, बाह्य अभिव्यक्त होने वाले अपने इस व्यक्तित्व की माँगों को अस्वीकार करना; और जो आप वास्तव में हैं, उसी पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहना, अपनी दिव्यता के प्रकटीकरण में सदैव बलपूर्वक, निरन्तर, सतत, अटूट अभ्यास में लगे रहना यही इस अदृश्य आध्यात्मिक सत्ता के प्रति हमारी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है।

यही, और केवल यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है और उनके गुरुत्व के प्रति प्रामाणिक स्वीकृति है “वह मेरे गुरु हैं, मैं उनका अनुसरण करता हूँ”, इसका प्रकटीकरण हमें अपने दृढ़, सतत प्रयत्न द्वारा बारम्बार तथा पुनः बारम्बार करना होगा अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करके, केवल उसका, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी अभिव्यक्त न करके ऐसा करना होगा। यही दिव्य जीवन जीना है, यही योग-वेदान्त है। यही गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की साधना है।

और हमें इस साधना में लगने के लिए, उनकी तपस्या, उनका त्याग, उनके साक्षात्कार के बाह्य और महान् प्रकटीकरण के रूप में यह पावन आश्रम अस्तित्व में आया है।

यदि आप अपनी दिव्यता की अभिव्यक्ति के रूप में इस आश्रम को लेते हैं और जो दिव्यता आपमें है, उसकी अभिव्यक्ति के अन्तर-प्रयास के लिए प्रत्येक स्थिति का आप लाभ उठाते हैं, तब यह आश्रम वास्तव में आपके लिए सार्थक है, तब आप इस आश्रम का सही अर्थ समझते हैं, तब आप बुद्धिमान् हैं, आपका दृष्टिकोण सही है। अन्यथा भले ही उन्होंने ज्ञानांजन-शलाका से आपके अज्ञान को हटा कर आपके नेत्र खोल दिये हों, तथापि आपने देखने से इनकार करके उन्हें पुनः मूँद लिया है।

वह कहते हैं कि यदि वस्तुओं की सत्यता को पहचानने की, संसार की वास्तविकता को जानने की, जिन परिस्थितियों और वातावरण में हम रह रहे हैं, उसकी वास्तविकता को जानने की हमारी इच्छा है तब ही गुरु का हमें ज्ञान-दृष्टि प्रदान करने के कार्य का लाभ है।

किन्तु यदि यह उत्तम-अत्युत्तम कार्य पूर्ण कर दिया गया है और आपकी दृष्टि में बाधा डालने वाले आवरण को भी हटा दिया गया है कि आप उसका उपयोग करके लाभान्वित हो सकें और तब भी आप नेत्र बन्द ही किये हुए हैं, तब उस पुनःप्रदत्त दृष्टि का कुछ भी प्रयोजन नहीं रह जाता।

इसलिए वह कहते हैं “उठो, जाग्रत होओ, अपने नेत्र खोलो और खुले नेत्रों से जीवन जिओ।” जो आपके चतुर्दिक् व्याप्त है, उसका मूल्य पहचानते हुए जिओ। इस अभी और यहीं की अवस्था को वर्तमान अवस्था को जो ईश्वर ने आपको वरदान-रूप में प्रदान की है, इसके महत्त्व को पहचानते-समझते हुए जिओ! तब प्रत्येक वस्तु अर्थपूर्ण हो

जायेगी, प्रत्येक वस्तु अनमोल बन जायेगी, प्रत्येक वस्तु आपको सच्चा दिव्य जीवन मनसा, वाचा, कर्मणा, दिन-प्रति-दिन, प्रतिपल जो दिव्यता आप वास्तव में हैं, उसे अभिव्यक्त करते हुए जीने में सहायक हो जायेगी।

अतः आज के दिन का बाँटने वाला विचार यह है कि इन महान्, पूज्य, श्रद्धेय परम तत्त्व के प्रति आप सबमें से प्रत्येक का शिष्यत्व के सम्बन्ध में क्या भाव होना चाहिए। यह चिन्तन आप सबके लिए एक आह्वान है कि आप वास्तव में जो हैं, उस दिव्यता को कभी विस्मृत न करें। स्वयं को और अपने चतुर्दिक् को, अपने भीतर और बाहर को उस दिव्यता से धन्य बनायें!

इस प्रकार इन दिव्य विभूति के प्रति अपने शिष्यत्व को अभिव्यक्त करने के लिए एक गुह्य शब्द है दिव्यता। आपके जीवन को वास्तविक, सही, प्रभावशाली और सच्चा बनाने के लिए एक ही रहस्यात्मक शब्द है दिव्यता। यह एक 'दिव्यता' शब्द आपके और पूज्य गुरुदेव के सम्बन्ध को अपने में समाहित कर लेता है। आप दिव्य हैं; इसलिए आपका जीवन, आपके विचार, आपकी भावनाएँ, आपकी वाणी और आपके कार्य भी दिव्य ही होने चाहिए।

गुरु की विद्यमानता के प्रति जागरूक रहें

जिनके दिव्य सान्निध्य में हम इस क्षण बैठे हुए हैं, हमारे उन परम पूज्य गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी को श्रद्धापूर्ण प्रणाम! उनकी दिव्य उपस्थिति हमें चतुर्दिक् से खींच कर हमारे अपने उच्चतम भले में, सर्वोच्च कल्याण में और इस जीवन के परम लक्ष्य की ओर ले जाने में लगा देती है।

यह दिव्य उपस्थिति हमें भीतर से भी भले जीवन की ओर प्रेरित करती है, सच्चाई के जीवन की ओर उद्यत करती है, चरित्र और व्यवहार की शुद्धता की ओर तत्पर करती है तथा हमें सहानुभूतिपूर्ण, करुणामय जीवन जीने को प्रेरित करती है। इसके अतिरिक्त उनका अपना उदात्त और प्रेरणाप्रद उदाहरण तथा उनके उपदेश हमें साधु-स्वभाव और भले संसारी बनने को, हमें काया, वाचा, मनसा पवित्र जीवन जीने को प्रेरित करते हैं।

अतः उनका दिव्य सान्निध्य केवल इस पावन समाधि-स्थल तक ही सीमित नहीं है। उनकी विद्यमानता सदा आपके संग है। प्रतिक्षण यह सर्वत्र व्याप्त है। उनकी इस विद्यमानता के प्रति यदि आप जागरूक हैं, तो यह शतगुणा बढ़ जाती है, आप इसे शतगुणा अधिक अनुभव कर सकते हैं। यदि आप विस्मृति की अवस्था में हैं, अथवा आपके विचार कहीं और होने के कारण आपका ध्यान किसी अन्य ओर है, तब भी उनकी विद्यमानता किंचित् भी कम नहीं होती; किन्तु आप स्वयं को उनके उत्थापक, प्रेरक दिव्य अवलम्बन से, उनके उन्नायक प्रभाव से उसी प्रकार वंचित कर लेंगे, जैसे कोई अपने-आपको शुद्ध वायु से वंचित कर लेता है। यदि कोई अपने

कक्ष के सभी द्वार और खिड़कियाँ कस कर बन्द कर ले, तो उसके कक्ष की वायु शीघ्र ही प्रदूषित हो जायेगी। ऐसा नहीं है कि शुद्ध ताजा वायु और प्रकाश का अभाव है, वह तो तब भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है; किन्तु हम अपनी मूर्खतावश, बिना यह जाने कि हम क्या कर रहे हैं, उसके प्रवेश को रोक कर स्वयं को उससे वंचित कर लेते हैं।

अतः भले ही यह जान-बूझ कर किया गया हो अथवा अज्ञानवश, परिणाम तो एक ही होता है, हम स्वयं को उससे विच्छिन्न कर लेते हैं, जो कि हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, अति-बहुमूल्य तथा बहुत आवश्यक है। इसलिए जो सम्पदा हमें उपलब्ध है, उसके प्रति तथा उसका अपने समस्त जीवन में जिस प्रकार प्रतिफल उपयोग करना आवश्यक है, उसके प्रति निरन्तर जागरूकता उत्पन्न करना यह शिष्यत्व के महत्त्वपूर्ण सार-तत्त्वों में से एक है। यदि आपके द्वारा अपनी प्रेरणा के स्रोत की विद्यमानता की इस जागरूकता को सचेतता से, परिश्रमपूर्वक, ध्यान-सहित, धैर्यपूर्वक, गम्भीरता से और निष्कपटता से पोषित नहीं किया गया, तो कुछ भी उपलब्धि नहीं होगी।

एक किसान के लिए बीज बो देना आवश्यक होते हुए भी, केवल वही पर्याप्त नहीं होता, उसे दिन-प्रति-दिन निरन्तर अथक परिश्रम से तब तक उसकी देखभाल करनी पड़ती है, जब तक वह पूरी फसल प्राप्त नहीं कर लेता। जो-कुछ उसने बोया है, उसकी सुरक्षा के लिए उसे निरन्तर सावधान रहना आवश्यक है। उदाहरणार्थ किसी सत्यनिष्ठ बौद्ध का यह आवश्यक सार-तत्त्व है कि वह इस जागरूकता के प्रति सदैव सचेत रहे कि भगवान् बुद्ध एक २५०० वर्ष पूर्व के अतीत की विभूति नहीं 'थे', प्रत्युत् वह सर्वथा

‘हैं’। यदि उसने इस जागरूकता को खो दिया, तो बौद्ध के बुद्धत्व को खो दिया समझें।

इसी प्रकार एक सच्चे धर्मपरायण ईसाई की ईसाइयत भी ऐसी ही अपने उस महान् मसीहा की प्रतिपल सर्वत्र विद्यमानता के प्रति जीवन्त जागरूकता है। यही वह जागरूकता है जो व्यक्ति को भगवान् ईसा का सच्चा अनुयायी बनाती है।

केवल तब ही हम उनकी उपस्थिति में एक आदर्श गुरु के एक सच्चे शिष्य की भाँति अपने दैनिक जीवन में कुछ भी करने से पूर्व प्रतिपल प्रत्येक पग पर सोचेंगे “वह क्या सोचेंगे? जो सदैव मेरे अंग-संग हैं, वह क्या चाहते हैं कि इस समय मैं कैसे व्यवहार करूँ? अपने शिष्यत्व के अनुरूप, उनके उपदेशों के आदर्शानुसार, उनको परिपूर्णता का आदर्श मानते हुए मेरे कार्य कैसे होने चाहिए?” क्योंकि एक उत्तम शिष्य ने अपने समक्ष अपने गुरु का जो आदर्श रखा होता है, वही अपने व्यक्तित्व में ला कर, अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रकट भी करता है।

इसलिए किसी भी महान् गुरु के सच्चे शिष्य होने का सार-तत्त्व है अपने गुरु की विद्यमानता के प्रति जागरूक होना; यह जागरूकता एक आदर्श और उपदेश दोनों ही रूपों में तथा पथ के प्रकाश और पथ दोनों के ही रूपों में होती है। क्योंकि गुरु की शिक्षाएँ, उनके आध्यात्मिक निर्देशों और उनके ज्ञानोपदेश पथ पर प्रकाश डालते हैं तथा गुरु का जीवन भव्य और दिव्य होने के कारण स्वयं ही पथ बन जाता है “मुझे भी ऐसा ही जीवन जीना चाहिए जैसा मेरे गुरु ने जिया है। जिस प्रकार मेरे गुरु कहते हैं और चलते हैं, मुझे भी उसी प्रकार कहना और चलना चाहिए।”

महान् गुरु कभी अतीत की सम्पत्ति नहीं होते। वह वर्तमान और भविष्य के भी होते हैं। वे सदैव विद्यमान रहते हैं। गुरु कभी अनुपस्थित नहीं होते। वे कभी भी दूर नहीं होते। देश और काल दोनों में ही वे सदैव निकटतम विद्यमान रहते हैं। आपके निज आत्मा में ही स्थित वे सदैव और सर्वत्र आपके नितटतम रहते हैं। “आप सदा ‘मुझ’ में और मैं सदा ‘आप’ में!” यह ऐसी सन्निकटता की अवस्था है जिसमें समय अथवा स्थान किसी के भी आधार की आवश्यकता नहीं रहती।

अतः गुरु की स्थाई और नित्य विद्यमानता की जागरूकता को पोषित करें “वे मेरे सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित किये हुए हैं। वे मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व पर, मेरे समस्त जीवन पर अभिभावी हैं, सदैव अभिभावी हैं; अतः प्रातः, सायं और रात्रि सदैव ही वे मेरे साथ हैं। केवल मन्दिर और समाधि मन्दिर में नहीं, प्रत्युत् जहाँ भी मैं जाऊँ, वे सदा मेरे साथ ही रहते हैं। मैं स्वयं ही उनकी अभिव्यक्ति का देवालय हूँ और वे मुझमें तथा मेरे द्वारा प्रकट और उद्भासित होते हैं। बाहर से वह मुझे सही दिशा की ओर ले जाते हैं और भीतर से सही दिशा की ओर प्रेरित करते हैं।

वास्तव में सच्चे शिष्यत्व की और सफल आध्यात्मिक जीवन जीने की यही कुंजी है। अपने गुरु से सर्वोच्च और सर्वाधिक लाभान्वित होने का यही मार्ग है। गुरु और एक सच्चे जिज्ञासु शिष्य के मध्य सूक्ष्म और अद्वितीय सम्बन्ध के बारे में यही सत्य है।

आपके जीवन में जो ईश्वर की प्रेमपूर्ण अनुकम्पा का बाहुल्य हुआ है, उसे पहचानें! ईश्वर की कृपा और आशीर्वाद जो आपके भीतर सच्चे शिष्यत्व के रूप में गुंजायमान होती रही है, उसे जानें! और सच्चे रूप में आशीर्वादित हों!

गुरुदेव का आह्वान

ब्राह्ममुहूर्त के आध्यात्मिक सत्र में भाग लेने वाले आप सब, प्रभु द्वारा दिये गये आज के इस नूतन दिवस में एक श्रेष्ठ ढंग से, एक सूक्ष्म और आध्यात्मिक रूप से प्रवेश करें।

यह आपका भौतिक निद्रा में से अपनी स्थूल देह का जागरण मात्र ही नहीं है, प्रत्युत् स्वयं को जन्म-मरण से परे उस अमर अनश्वर परमात्मा के समरूप अनुभव करते हुए, स्वयं को सत्-चित्-आनन्द अनुभव करते हुए आप अपने निज-स्वरूप में प्रविष्ट हो रहे हैं। इस प्रकार आप नित्य ही प्रत्येक दिन को एक नवीन आध्यात्मिक जागरण, एक नूतन पुनर्जन्म बना लेते हैं, जिससे कि आपका प्रत्येक दिवस ईश्वरानुभूति के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर एक ऊर्ध्वगामी कदम बन जाता है।

आपकी चेतना का यह ऐसा चरम बिन्दु है जहाँ पहुँच कर आप जान लेते हैं कि न मेरा जन्म हुआ है, न ही मेरा मरण है, न मुझे कोई बन्धन है, न ही मुक्ति की खोज मैं सदा से वही परम तत्त्व हूँ, उसी से जुड़ा हुआ हूँ जो परम सत्य है, अजन्मा, शाश्वत, अनादि, कालातीत, अनश्वर और नित्य है।

अतः अपनी स्वतन्त्रता में आनन्दित हों! अपनी शाश्वत, जन्म-मरण से परे की निज अवस्था में आनन्दित हों। जो आप वास्तव में हैं, अपने उस

निज सत्य स्वरूप में आनन्दित हों। इस निज सत्य स्वरूप के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव ने अत्यन्त सुन्दर, विलक्षण और भव्य संगीतपूर्ण ज्ञानोपदेश एक भजन के रूप में दिया है :

चिदानन्द चिदानन्द चिदानन्द हूँ,
 हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ।
 अजरानन्द अमरानन्द अचलानन्द हूँ,
 निर्भय और निश्चिन्त चिद्घनानन्द हूँ,
 कैवल्य केवल कूटस्थ आनन्द हूँ,
 नित्य शुद्ध सिद्ध सच्चिदानन्द हूँ,
 हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ॥

इस भजन में हम एक तथ्य भूल जाते हैं, जब गुरुदेव कहते हैं कि 'हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ', तब हम यह 'हर हाल' प्रत्येक अवस्था को बाह्य परिस्थितियों से समझ लेते हैं बाह्य जगत् में हमारी कैसी भी अवस्था हो, कैसी भी परिस्थितियाँ हों, कैसा लोगों का व्यवहार हो, इत्यादि; किन्तु इसमें मुख्य बात हम यह भूल रहे हैं कि 'हर हाल' आपके अपने सम्बन्ध में कहा गया है, आपके शरीर की कुछ भी स्थिति हो स्वस्थ अथवा अस्वस्थ हों, बैठे हों या खड़े हों, कार्यरत हों या आराम कर रहे हों; आपकी मानसिक दशा भी भले ही कैसी भी हो प्रसन्न-चित्त हों या असन्तुष्ट हों, शान्त हों या झुँझलाहट में हों, आपकी बुद्धि भले ही किसी भी अवस्था में हो कोई-न-कोई समस्या उत्पन्न करने की अवस्था में हो अथवा उन्हें सुलझाने में लगी हो, भले ही कैसी परिस्थिति क्यों न

हो नकारात्मक या सकारात्मक कुछ भी, “हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ।”

यह है चिदानन्द। यहाँ सत्-चित्-आनन्द नहीं कहा गया है; क्योंकि सत् कहना अनावश्यक है। सत् का अर्थ है अस्तित्व होना। आपके अस्तित्व को प्रमाणित करना व्यर्थ है; क्योंकि आपको यह किसी द्वारा बतलाये जाने की आवश्यकता नहीं है कि आप हैं। आप जानते हैं कि आप हैं। किन्तु आप यह समझते हैं कि आप श्रीमान् अमुक व्यक्ति हैं। ‘मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, युवा या वृद्ध हूँ, अमुक देशवासी हूँ’, इत्यादि। यहीं से समस्या का आरम्भ होता है। यही दुःखों का मूल है, जिसके कारण आपको व्यथित होना पड़ता है। अतः यह जान लें कि आपका अस्तित्व शुद्ध आत्मा का है, पूर्ण आनन्द का है। आप चिद्-आनन्द हैं! पूर्णतया, समग्र रूप से, ९९.९५ प्रतिशत नहीं, १०० प्रतिशत। अतः जाग्रत हों! इस भ्रान्ति में न रहें कि आप कुछ अन्य हैं। तत्परता से उठें और जान लें कि आप वही हैं। क्योंकि वास्तव में हम वही हैं, जो हम भीतर से हैं। हमें कोई भी परिवर्तित नहीं कर सकता। आप वास्तव में जो हैं, उस सत्य को कोई भी नहीं बदल सकता।

इसलिए यह महान् आह्वान मानव मात्र के लिए एक उपहार है, केवल अतीत के प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रदत्त उपहार नहीं, प्रत्युत् हमारे अपने युग के मनीषियों द्वारा दिया गया वही उद्बोधक आह्वान है। हमारे श्रद्धेय स्वामी शिवानन्द जी ने हमें इधर-उधर अथवा कहीं और देखना छोड़ कर जहाँ हम हैं, वहीं से देखने के लिए कहा। उन्होंने कहा

“मौन हो जायें और ‘मैं हूँ’, इसे जानें; मन को मौन करें, आवेगों को शान्त करें, कोलाहल मचाती हुई इन्द्रियों को शान्त करें। अपनी इस

आन्तरिक प्रशान्ति में जानें कि आप नित्य शुद्ध, परिपूर्ण चिदानन्द स्वरूप हैं।” आओ, अपने सम्बन्ध में दिये गये, इस जागरूकतापूर्ण मौन सन्देश को ग्रहण करें और जागरूक रहें पुनः कभी भी न सोते हुए सदैव जागृति की अवस्था में ही कार्यरत रहें। हर प्रकार की आन्तरिक अवस्था में हम सदैव जागरूकता की स्थिति में रहें।

८

गुरु-कृपा

शास्त्रों में हमें बताया गया है कि गुरु-कृपा एक ऐसा अद्भुत, विलक्षण तत्त्व है जो साधक को जीवन का परम अर्थ, आत्म-साक्षात्कार, प्रभु-दर्शन अथवा मोक्ष की आकांक्षा तथा उसके उपरान्त परमार्थ-प्राप्ति के योग्य बना देता है; शिष्य साधना करता हो अथवा नहीं, वह योग्य अधिकारी हो या न हो, गुरु-कृपा आध्यात्मिक जगत् के समस्त सामान्य नियमों को एक ओर करके व्यक्ति को लोकोत्तर आनन्द में ले जाती है। यदि हमें धर्मग्रन्थों में विश्वास है, तो कहना चाहिए कि जीवन में पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए गुरु-कृपा के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।

इसके साथ ही, यदि यह बात भी सत्य है कि गुरु दया का असीम सागर है, कि वह जिज्ञासु साधकों पर निरन्तर अपनी कृपा-वृष्टि करता ही रहता है, भले ही वे इसके अधिकारी हों या न हों, वे इसके योग्य हों अथवा न हों, तब तो फिर अब तक हम सभी को आप्त-काम हो चुके होना चाहिए, आनन्द से परिपूर्ण हो चुके होना चाहिए। क्या ऐसा है? नहीं। दुःख है कि हम अभी भी उसी तरह फँसे हुए हैं, अज्ञान भी है, भ्रान्तियाँ भी हैं, और हम हर मोड़ पर अपनी ही निम्न प्रकृति के छलावे में आ जाते हैं।

कमी फिर कहाँ है? कौन-सा कथन झूठ है? यदि दोनों ही कथन सत्य हैं और फिर भी शिष्य पूर्णतया संसार में ही ग्रस्त हैं, तो कहीं-न-कहीं

कुछ अन्य गलती होगी, वह 'अन्य कुछ' क्या है? हम यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकते कि धर्मग्रन्थ असत्य हैं। इसके साथ ही हम यह भी नहीं कह सकते कि गुरु दयालु नहीं हैं, कि वह हम पर कृपा-वृष्टि नहीं करते।

यदि हम इस पर मनन करें तो कुछ ऐसे तत्त्व हमारे सामने आयेंगे, जो ध्यान देने योग्य हैं। निःसन्देह गुरु-कृपा एक ऐसा अद्भुत तत्त्व है जो चेतन प्राणी की तो बात ही क्या, एक पत्थर तक को भी असीम सच्चिदानन्द में परिवर्तित कर सकता है। इस तथ्य में, और इस कथन में कि 'गुरु सदा ही करुणा का सागर है', किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं है। किन्तु, गुरु-कृपा की केवल वृष्टि ही नहीं होनी होती, उसे ग्रहण भी करना होता है। इसको ग्रहण करने से ही हम स्वयं को अमर बना सकते हैं, दिव्य बना सकते हैं।

किसी उदार, दानशील व्यक्ति द्वारा अपार धन-सम्पत्ति भी दी जाये; किन्तु संसार-भर की सम्पदा का भी उस दरिद्र व्यक्ति को कोई लाभ नहीं, यदि वह उसे ग्रहण नहीं करता। इसीलिए भगवान् यीशु ने कहा, "माँगिए, और वह आपको मिलेगा; खोजिए, आपको प्राप्त होगा; खटखटाइए, द्वार आपके लिए खुल जायेंगे।" ऐसा नहीं है कि कभी दिव्य-वदान्यता का, दिव्य-कृपा का, गुरु-कृपा का अभाव रहा है। प्रकाश का अभाव नहीं था। किन्तु एक नियम है कि हमें माँगना पड़ेगा, हमें खोजना पड़ेगा और खटखटाना पड़ेगा, और यह सब करने के बाद हमें ग्रहण करने के लिए भी निश्चित रूप से तैयार रहना पड़ेगा। यदि यह सभी कुछ है, तब फिर गुरु-कृपा अद्भुत रंग लाती है; यह हममें प्रवाहित होने लगती है और हमें अमरत्व के, अनन्त प्रकाश के एवं असीम आनन्द के साम्राज्य तक उठा कर ले जाती है।

किन्तु, हम कैसे ग्रहण करें? इस कृपा को ग्रहण करने को तैयार होने के लिए हमें क्या करना होगा? उत्तर है शिष्यत्व के द्वारा। क्योंकि गुरु और गुरु-कृपा का प्रश्न तो केवल शिष्य के लिए उठता है। ऐसे व्यक्ति जो शिष्य नहीं हैं, उनके लिए दया, करुणा और आशीर्वाद नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। किन्तु जब मैं 'गुरु-कृपा' कहता हूँ तो यह कुछ विशेष, कुछ रहस्यमय ऐसा तत्त्व है जो केवल इस जगत् की प्रत्येक वस्तु ही नहीं, बल्कि वह सर्वोच्च वस्तु जिसके लिए यह मानव-जन्म मिला है, भी प्रदान करता है। भक्त को सन्त के आशीर्वाद प्राप्त हो सकते हैं, उनकी करुणा शक्ति भी प्राप्त हो सकती है। किन्तु गुरु-कृपा का वरदान प्राप्त करने के लिए, हमें पहले शिष्य बनना पड़ेगा।

शिष्य होने के लिए क्या करना होगा? ऐसा नहीं है कि गुरु शिष्य को स्वीकार करता है; बल्कि पहले शिष्य ने गुरु को स्वीकार करना होता है। यदि व्यक्ति अपने-आपको शिष्य-रूप में समर्पित कर देता है तो गुरु का यह कहना कि 'हाँ, तुम मेरे शिष्य हो' अथवा 'नहीं हो' का कोई महत्त्व नहीं रखता, वह व्यक्ति गुरु-कृपा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी हो जाता है।

फिर, हमें गुरु की सेवा करनी होती है। सेवा वह गुह्य तत्त्व है जो गुरु-कृपा और हमारे बीच में आने वाली बाधाओं को तोड़ देता है। अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। हमारे पुराने चले आ रहे मिथ्याभिमान, पूर्व-कल्पित धारणाएँ, यह दूसरी विकट बाधा हैं। इन सबके लिए सेवा प्रभावशाली बाधा-भंजक है।

एक बार, एक गुरु ने शिष्य की परीक्षा लेने के लिए अपनी पीठ की पैर से मालिश करने का आदेश दिया। उसने कहा, "मेरी कमर में दर्द है, प्रिय शिष्य, क्या तुम अपने पाँव से मेरी पीठ की मालिश कर दोगे?" शिष्य

ने कहा, “महाराज, मैं आपके पावन शरीर पर अपने पाँव कैसे रख सकता हूँ? यह तो भारी पाप है?”

गुरु ने उत्तर दिया, “किन्तु मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके क्या तुम मेरी वाणी पर अपने पाँव नहीं रख रहे?”

इस उदाहरण से व्यक्ति को ‘सीख’ लेनी चाहिए। अपने गुरु के आदेश पालन में शिष्य को अपनी बुद्धि बीच में नहीं चलानी चाहिए। उसे धीरता को न त्यागते हुए गुरु के प्रति सच्ची और स्थाई भक्ति विकसित करनी चाहिए। व्यक्ति को हर प्रकार से गुरु की सेवा करनी चाहिए, अपने शरीर द्वारा उनकी सेवा करनी चाहिए, उनकी आज्ञाओं का निस्संकोच पालन करना चाहिए।

गुरु की शिक्षाओं का पूरी तरह से पालन करने का यथा-सम्भव प्रयास करना गुरु-सेवा है, उनके उदात्त निर्देशानुसार हमें अपना जीवन ढालना होगा। गुरु के निर्देशों का पूरी तरह से पालन करने का रहस्य है स्वेच्छापूर्वक, हृदय में आज्ञा-पालन का भाव सुदृढ़ करना। यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है पूर्णतया उनके समक्ष दण्डवत् समर्पण होने की तत्परता तथा उन्हें अपना नायक मानते हुए आज्ञा का पालन करना।

आन्तरिक रूप से, हमने जो गुरु के सम्बन्ध में, उनकी कृपा के सम्बन्ध में तथा उसके कार्यों के सम्बन्ध में किसी-न-किसी प्रकार की पुरानी धारणाएँ बना ली हैं, उन्हें भी तोड़ना होगा। यह एक कठिन कार्य है; किन्तु फिर भी इसे करना होगा, क्योंकि शिष्य के लिए गुरु मानव नहीं हैं। हमें गुरु के मानवीय पक्ष की ओर पूरी तरह से नेत्र बन्द कर लेने चाहिए और हमें केवल उनकी दिव्यता के प्रति ही जागरूक रहना चाहिए। केवल तब ही

उस गुरु-कृपा का वरदान प्राप्त कर सकेंगे जो हमारे निम्न मानवी स्वभाव को सर्वातीत दिव्यता में परिणित कर देगा।

जब तक स्वयं को समस्त इच्छाओं, सीमाओं और कमजोरियों से युक्त सांसारिक मनुष्य समझते रहते हैं, तब तक हम गुरु के परिपूर्ण दिव्य स्वरूप की जागरूकता में पूर्णरूपेण प्रवेश नहीं कर सकते। इसलिए सर्वप्रथम हमारी साधना यह होनी चाहिए कि सबसे पहले अपनी मानवीय चेतना को दूर करें और फिर दिव्य जागरूकता को विकसित करें। यदि हम यहाँ पर दिव्यता से युक्त, दिव्य लक्ष्य को ले कर जीना आरम्भ कर देते हैं तो फिर धीरे-धीरे गुरु-कृपा एवं गुरु का दिव्य पक्ष हमारे समक्ष प्रकट होने लगता है।

इसलिए सर्वोत्तम तो यह है कि हम विनीत भाव से सब-कुछ गुरु पर छोड़ दें। “मैं नहीं जानता (जानती) कि मैं शिष्य हूँ कि नहीं। अतः हे दया एवं करुणा के सागर मेरी प्रार्थना है कि मुझे उपयुक्त शिष्य बनायें। मुझमें वह आकांक्षा उत्पन्न कर दें, जो मुझे शिष्य बना दे, और मुझमें हर्ष-सहित आदेश-पालन की भावना उत्पन्न कर दे। आपके द्वारा निश्चित किये गये मार्ग के अनुसार अपना जीवन ढालने में मेरी सहायता करें।” यह प्रार्थना निरन्तर होती रहनी चाहिए। केवल इससे ही हम गुरु-कृपा को प्राप्त करने के योग्य बन सकेंगे और अपना जीवन लाभप्रद बना सकेंगे। और प्रार्थना करने का सबसे उत्तम मार्ग है सच्चा शिष्य बनने का पूरा प्रयत्न करते रहना।

गुरुदेव ने हमें क्या शिक्षा दी !

विभिन्न गुरु आ कर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रणालियाँ बताते और पथ दर्शाते हैं। कोई कीर्तन का मार्ग बताते हैं, कोई शक्तिपात करते हैं, कुछ कुण्डलिनीयोग, कई अन्य आत्म-संयम, प्रार्थना, उपासना, स्वाध्याय और ध्यान के पारम्परिक पथ दर्शाते हैं। अब हमारे समक्ष प्रश्न हो सकता है “हमारे लिए गुरुदेव कौन-सा मार्ग बतलाते हैं और हमें उनके ऊर्जास्पद व्यक्तित्व को किस भाँति अपने व्यक्तिगत जीवन में अभिव्यक्त करना चाहिए?”

इस विषय में गुरुदेव ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से हमारे लिए एक निश्चित मार्ग प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा “आप दिव्य हैं; अतः जो आप हैं, वही रहें। अपनी दिव्यता के प्रति जागरूक रहें और दिव्यतापूर्वक जीवन जियें। आपका मूल स्रोत दिव्य है; अतः दिव्यानुभूति को ही अपना परम लक्ष्य बनायें। जहाँ से आप आये हैं, उसी को निश्चित रूप से आपने पुनः प्राप्त करना है। यह आपका प्रारब्ध है और यही आपकी महान् अन्तिम परिणति भी है।”

अतः उन्होंने ‘दिव्य’ और ‘दिव्यता’ शब्दों पर बल दिया। निश्चित रूप से आप दिव्य हैं। अस्थि-मांस का पिंजरा नहीं है आप। यह अशुद्ध, चंचल, परिवर्तनशील और अस्थिर मन भी आप नहीं हैं। न ही आप यह सीमित, कभी युक्तिसंगत और कभी अयुक्तिसंगत हो जाने वाली अविश्वसनीय बुद्धि हैं। आप शरीर, मन और बुद्धि से परे, परम पिता

परमात्मा की सन्तान, समस्त अन्धकार से परे ज्योतियों की परम ज्योति की एक प्रकाश-किरण, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप परम चैतन्य के असीम सागर की एक तरंग हैं। आप परमात्मा का एक अंश हैं। दिव्यता आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह जीवन उसी दिव्यता की जागरूकता और उसकी अनुभूति प्राप्त करने का एक सुअवसर है। अतः दिव्य जीवन जियें। दिव्यता आपका लक्ष्य है। दिव्यता आपकी मूल प्रकृति है। दिव्यता से आपका जीवन भर जाना चाहिए। अतः अपने जीवन को दिव्य बनायें।

इसके लिए उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट निर्देश दिया है, आगे बढ़ने के लिए निश्चित मार्ग बताया है और उन्होंने इसके सारतत्त्व के रूप में अपने सन्देश के केन्द्रीय भाव को तीन सूत्रों के रूप में जीवन में उतार लेने के लिए बताया सम्पूर्ण प्राणि-वर्ग के प्रति विश्व-प्रेम तथा दया; काया-वाचा-मनसा सत्यता; और दैनिक जीवन में उदात्त, उच्च तथा शुद्ध चरित्र और व्यवहार।

उन्होंने हमें इन नियमों का पालन करने के लिए कहा। ये विश्व के समस्त धर्मग्रन्थों की शिक्षा का सारतत्त्व हैं। ईश्वर के सभी पीर, पैगम्बरों और मसीहाओं के उपदेशों का भी यही सार है। अतः ये तीनों धर्म का आधार, वेदान्त का आधार, योग का आधार, आध्यात्मिकता का आधार और ईश्वरानुभूति का आधार बनाते हैं। जो-कुछ गुरुदेव ने कहा, उसके सम्बन्ध में उन्हें कोई शंका नहीं थी और जैसा वे चाहते थे कि हमें होना चाहिए, वह बता कर उन्होंने हमें भी किसी दुविधा में नहीं छोड़ा।

ये तीन सूत्र उन्होंने बनाये अहिंसा, सत्य और पवित्रता, जो कि दिव्य जीवन संघ के सदस्य के लिए पूर्वापेक्षित हैं। उन्होंने यह भी सिखाया कि हमें हृदय, बुद्धि और हाथों का समन्वयात्मक और सुव्यवस्थात्मक

विकास अपने दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य में, अपनी भावनाओं में और अपने आन्तरिक अनुशासन में करना चाहिए। वे चाहते थे कि हम इसके साथ-साथ सेवापरायणता की भावना, ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास, इन्द्रिय-संयम, ध्यान के लिए मन की एकाग्रता और नियन्त्रण तथा दार्शनिक जिज्ञासा हेतु जागरूकता और सतर्कता को विकसित करें।

इस प्रकार यह एक जीवन्त आध्यात्मिक शक्ति है, जिसे प्रतिष्ठित करके वे हमारे लिए छोड़ गये हैं। इस शक्ति के रूप में वस्तुतः वे ही कार्य कर रहे हैं। दिव्य जीवन यापन के इस आलोक के रूप में वे ही कार्यशील हैं। जो व्यक्ति इन नियमों का अनुसरण करता है, वह गुरु की ही उपासना करता है और वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। इसमें कुछ भी शंका नहीं है। या तो अभी अथवा कुछ समय पा कर भविष्य में निश्चय ही वह अपने लक्ष्य को अवश्य पा लेगा।

इस प्रकार शिवानन्द-जीवन-पद्धति से जीवन यापन करने का रहस्य है दिव्यता। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक वस्तु में, समस्त जीवन में पूर्णरूपेण दिव्यता। और यह जानने के लिए सभी धर्मग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करना होगा कि दिव्यता की परिभाषा क्या है, दिव्यता के अर्थ क्या हैं, दिव्यता में क्या-क्या समाविष्ट है और दिव्यता के प्रतिकूल क्या-क्या है? हमारे जीवन को उदात्त बनाने के लिए, हमें ईश्वर की ओर ले जाने के लिए और हमें अपना जीवन परम आनन्द से विभूषित करने के लिए यह एकमात्र सूत्र दिव्यता ही पर्याप्त है।

यह है जो पूज्य गुरुदेव ने हमें दिया है और जो हमने उनसे ग्रहण किया है। यही वह सूत्र है जिससे हमारा जीवन और जीवन यापन का ढंग सम्पन्न होना चाहिए। उनके आह्वान का हमारा यही उत्तर होगा और हमारे शिष्यत्व

का प्रमाण भी। यही शिक्षा देने के लिए वे आये थे। यह हमारी पैतृक सम्पदा है। अपने इस उत्तराधिकार को हमने प्राप्त करना है। आओ, हम सब अपने इस उत्तराधिकार को प्राप्त करें और उस दिव्यता से प्रकाशित हो जायें जो हम वास्तव में हैं!

